International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारतीय मूर्तिकला में गणेश प्रतिमा का विकास: प्रतीकात्मकता एवं कला-शैली के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

Dr. Richa Pathak

Assistant Professor
Department of Ancient History Archaeology and Culture
K.S. Saket P.G. College, Ayodhya

सार

भारतीय मूर्तिकला में भगवान गणेश की प्रतिमाओं का विकास प्राचीन काल से लेकर विभिन्न राजवंशों के समय तक क्रमिक रूप से हुआ है। [1]

प्रारंभिक काल (चौथी से छठी शताब्दी)

- आरंभिक स्वरूप: गुप्त काल और उससे पहले (चौथी-पाँचवीं शताब्दी) में गणेश जी की स्वतंत्र प्रतिमाएं कम मिलती हैं, लेकिन अफगानिस्तान के गार्देज़ से प्राप्त प्रतिमा (4वीं-5वीं शताब्दी) इस परंपरा के प्राचीन साक्ष्य प्रस्तुत करती है। [1]
- विशेषताएं: इस दौर में वे सामान्यतः दो या चार भुजाओं वाले, छोटे पेट और हाथी के सिर वाले सरल रूप में दिखाई देते थे।

परिचय

चालुक्य काल (6वीं से 8वीं शताब्दी)

- भव्यता का आगमन: चालुक्य वंश के शासनकाल में गणेश की प्रतिमाएं अधिक बड़ी, अलंकृत और भव्य बनने लगीं। [1]
- प्रमुख स्थान: कर्नाटक की बादामी और ऐहोल की गुफाएं तथा महाराष्ट्र की एलोरा की गुफाएं (7वीं शताब्दी) इस शैली की प्रतीक हैं। इनमें उन्हें जटिल मुद्राओं, सुंदर मुकुटों और समृद्ध आभूषणों के साथ दर्शाया गया है। [1, 2]

चोल और होयसल काल (9वीं से 13वीं शताब्दी)

- कांस्य और प्रस्तर कला: चोल काल में तमिलनाडु के शासकों ने कांस्य मूर्तिकला को ऊंचाई दी, जबकि होयसल काल (13वीं शताब्दी) की मूर्तियों में बेहद बारीक़ नक्काशी देखने को मिलती है। [1]
- नृत्य मुद्रा: इस काल में नृत्त गणपति (नृत्य करते हुए गणेश) की प्रतिमाएं बेहद लोकप्रिय हुईं। [1, 2]

प्रतीकात्मक विकास और विशेषताएं

- हाथों और आयुधों का विस्तार: शुरुआत में चार भुजाओं (जिनमें मोदक, टूटा हुआ दांत, परशु/कुल्हाड़ी और पाश होते थे) का चलन बढ़ा, जो आगे चलकर 6, 8, 10 या उससे अधिक भुजाओं वाले रूपों में विकसित हुआ। [1, 2]
- क्षेत्रीय विविधता: नेपाल में 5 सिर वाले हेरम्ब गणपति और तिब्बत-जापान (कांगितेन) तक गणेश स्वरूप स्थानीय सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुसार ढलते चले गए। [1, 2]

ऐतिहासिक रूप से, गणेश जी ने पूरी दुनिया की यात्रा की है, और गणेश जी की सबसे पुरानी जीवित प्रतिमा 531 ईस्वी में चीन के कुंग-सिन प्रांत में पाई गई थी !

दरअसल, गणेश जी की मूर्तियां जापान से लेकर थाईलैंड और इंडोनेशिया के द्वीपों और यहां तक कि अफगानिस्तान तक, पूरी दुनिया में पाई गई हैं। अफगानिस्तान के गार्देज़ में स्थित गणेश जी की प्रतिमा चौथी या पांचवीं शताब्दी ईस्वी की है । यानी लगभग 2,500 साल पुरानी! गणेश जी को अन्य धर्मों में भी अपनाया गया है, और जापान के बौद्ध मंदिरों में उनकी एक प्रतिमा देखी जा सकती है। वहां उन्हें कांगितेन रूप में रूपांतरित किया गया है , और गणेश जी के इस रूप की पूजा भारत में हमारे यहां की पूजा से अलग तरीके से की जाती है।[3,4,5]
गणेश मूर्तियों की कहानी लगभग 3,000 वर्ष पूर्व मथुरा की प्राचीन कला में हाथी के सिर वाले यक्षों (हिंदू, बौद्ध या जैन पौराणिक कथाओं में प्रकृति के देवता या छोटे देवता) की मूर्तियों से शुरू होती है। चीन के कुंग-सिन में स्थित गणेश की मूर्ति भी इसी काल की मानी जाती है। उस समय गणेश के स्वरूप अभी विकसित हो रहे थे और आज के स्वरूपों की तुलना में सरल और पतले थे।

कुछ समय बाद, लगभग 2,500 साल पहले मध्य प्रदेश की उदयगिरि गुफाओं की प्रसिद्ध मूर्तियों और मुंबई के पास एलिफेंटा गुफाओं की नक्काशी में गणेश अपने अधिक पारंपरिक रूप में दिखाई देते हैं।

गणेश जी का स्वरूप कैसे विकसित हुआ?

समय के साथ, गणेश जी के स्वरूप में वे विशिष्ट लक्षण विकसित हुए जिन्हें हम आज पहचानते हैं। प्रारंभिक मूर्तियों में गणेश जी को केवल दो भुजाओं के साथ दर्शाया गया था, लेकिन अब उन्हें आमतौर पर चार भुजाओं के साथ चित्रित किया जाता है, जिनमें से प्रत्येक में उनका टूटा हुआ दांत , एक फंदा, एक लड्डू या मोदक का कटोरा और एक कुल्हाड़ी होती है। ये वस्तुएं क्रमशः बाधाओं को दूर करने की उनकी क्षमता, मन पर उनके नियंत्रण, मिठाई के प्रति उनके प्रेम और बुराई को नष्ट करने की उनकी शक्ति का दृश्य प्रतिनिधित्व करती हैं।
अन्य देवताओं की तुलना में गणेश जी की पूजा का विकास बाद में हुआ , लगभग 500-750 ईस्वी के आसपास। हालांकि यह अन्य देवताओं की तुलना में बाद में हुआ, फिर भी यह लगभग 2,300 वर्ष पूर्व प्राचीन काल में ही हुआ था। इस दौरान, कर्नाटक के होयसला शासकों ने गणेश जी की अविश्वसनीय रूप से विस्तृत मूर्तियों वाले मंदिर बनवाए, जिनमें आभूषणों का प्रत्येक टुकड़ा और वस्त्र की प्रत्येक तह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। लगभग उसी समय, तमिलनाडु क्षेत्र के चोल राजवंश ने कांसे की ढलाई से गणेश जी की मूर्तियां बनवाईं, जिससे वे अधिक सुवाह्य हो गईं और अंततः उन मूर्तियों का विकास हुआ जिन्हें हम आज जुलूसों में लेकर चलते हैं। [6,7,8]

आधुनिक उपासना को आकार देना

लगभग 200-300 साल पहले, मराठा शासकों ने गणेश को अपने पारिवारिक प्रतीक के रूप में अपनाया और गणेश को एक सहायक देवता से मुख्य देवता के रूप में ऊपर उठाने के सचेत प्रयास में अधिक गणेश मंदिरों का निर्माण किया।

1893 में, लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजों के खिलाफ समर्थन जुटाने के लिए पहले गणेशोत्सव उत्सव की शुरुआत की। इससे गणेश चतुर्थी एक निजी पारिवारिक उत्सव से बदलकर आज के भव्य सार्वजनिक उत्सव में तब्दील हो गया। इस सार्वजनिक उत्सव में परिवर्तन ने कलाकारों पर नई मांगें पैदा कीं और स्थायी पत्थर या कांसे की मूर्तियों की जगह अस्थायी मिट्टी की मूर्तियों का चलन शुरू हुआ, जो पंडालों के लिए बनाई जाती थीं और फिर विसर्जन (जल में विसर्जन) के लिए होती थीं।

फिर भी, हर बदलाव के बावजूद, गणेश जी का सार अपरिवर्तित रहता है। आज के उत्सव हजारों वर्षों पुरानी परंपरा की जीवंत धड़कन हैं। मुंबई और पुणे के कुशल कारीगर न केवल पारिवारिक व्यवसाय को आगे बढ़ाते हैं, बल्कि भक्ति की एक लंबी श्रृंखला के संरक्षक भी हैं। हर उत्सव की मूर्ति में, प्राचीन परंपराएं आधुनिक उत्सवों से मिलती हैं, जो यह साबित करती हैं कि कला भले ही बदल जाए, लेकिन उसमें निहित भावना शाश्वत है।

गणेश चतुर्थी पूरे भारत में मनाया जाने वाला त्योहार है। यह भगवान गणेश के जन्म का उत्सव है, जिन्हें अनेक लोग पूजते हैं। यह सदियों से मनाया जा रहा है, और इसके साथ जुड़ी परंपराएं और रीति-रिवाज भी सदियों से चले आ रहे हैं। इस त्योहार का सबसे प्रमुख अनुष्ठान गणेश प्रतिमा को जल में विसर्जित करना है। यह प्रतीकात्मक रूप से गणेश की आत्मा की प्रकृति में वापसी का प्रतीक है, जो अब तक प्रतिमा में निवास कर रही थी। विसर्जन की परंपरा को अनेक लोग पवित्र मानते हैं और इसे सबसे महत्वपूर्ण अनुष्ठानों में से एक माना जाता है। पवित्र और पावन प्रथा होने के बावजूद, समय के साथ कुछ कारकों के कारण इस परंपरा की अपनी कुछ कमियां भी सामने आई हैं। इससे उत्पन्न एक प्रमुख समस्या प्रतिमा के आधार घटक के रूप में मिट्टी के स्थान पर प्लास्टर ऑफ पेरिस का उपयोग और प्लास्टर ऑफ पेरिस की प्रतिमाओं का प्राकृतिक जल निकायों में विसर्जन है। यह सामग्री उन जल निकायों के लिए काफी हानिकारक है जिनमें इसे विसर्जित किया जाता है। यह न केवल अघुलनशील है, बल्कि अपनी कृत्रिम प्रकृति के कारण जलीय जीवन और जल की स्वच्छता के लिए भी खतरा पैदा करती है। एक अध्ययन में, जिसमें कई कलाकारों को शामिल किया गया था, मिट्टी से प्लास्टर ऑफ पेरिस की ओर बदलाव के कई कारण सामने आए। मुख्य कारण यह था कि प्लास्टर ऑफ पेरिस मिट्टी की तुलना में कहीं अधिक आसानी से काम करता है। यह जल्दी बनता है, कहीं अधिक टिकाऊ, हल्का होता है और इसे सांचे में डालकर आसानी से बनाया जा सकता है। यह सस्ता भी है। उपभोक्ताओं की ओर से भी प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियों की मांग है, जिससे कारीगरों के हाथ बंधे हुए हैं। इन सभी कारणों ने कारीगरों को प्लास्टर ऑफ पेरिस की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।[9,10,11]

विचार-विमर्श

सवाल यह है कि वास्तव में 'पर्यावरण के अनुकूल' या 'टिकाऊ' क्या है? हम मिट्टी का उदाहरण ले सकते हैं। यह एक प्राकृतिक पदार्थ है और पानी में तुरंत घुल जाती है। इससे यह विसर्जन के लिए पूरी तरह सुरक्षित होनी चाहिए। दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं है। मिट्टी की अपनी कमियां हैं। सबसे पहले, यह एक गैर-नवीकरणीय स्रोत है। साथ ही, मिट्टी पानी में विसर्जित होने पर कीचड़ बनाती है। इससे नदियों में जल अवरोध उत्पन्न हो सकते हैं। मेरे द्वारा साक्षात्कार

किए गए कारीगरों ने भी यही कारण बताया। एक साथ बड़ी संख्या में मूर्तियों का विसर्जन करने से जल निकायों में मिट्टी के बड़े-बड़े ढेर लग जाते हैं, जिससे कई तरह की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इस मिट्टी का पुनर्चक्रण करके इसका उपयोग करना टिकाऊपन का एक कारगर तरीका है, लेकिन मिट्टी का निष्कर्षण और उसके बाद परिवहन भी एक समस्या है जिसका समाधान करना आवश्यक है। इकोएक्जिस्ट जैसे संगठन अपने पुनर्वर्तन अभियान के माध्यम से इस समस्या का समाधान कर रहे हैं, लेकिन समस्या अभी भी बनी हुई है। स्थिरता का दायरा हर दृष्टिकोण के साथ बदलता रहता है। क्या कोई चीज वास्तव में टिकाऊ है यदि वह पूरे समुदाय की आजीविका को खतरे में डाल रही हो? यह पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ हो सकता है, लेकिन क्या यह वास्तव में पूरे समाज को टिकाऊ और लाभ पहुँचाता है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर हमें गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। मिट्टी के मॉडल अभी भी अपेक्षाकृत लोकप्रिय हैं। कुछ लोग मिट्टी को ही पसंद करते हैं। लेकिन प्लास्टर ऑफ पेरिस ने बाजार का एक बड़ा हिस्सा हासिल कर लिया है, और सही विकल्प और समाधान प्रदान किए बिना इसे पूरी तरह से छीनने का प्रयास निश्चित रूप से कई कारीगरों को बेरोजगार कर देगा।

कारीगरों को टिकाऊ प्रथाओं को अपनाने में कठिनाई क्यों होती है?

इससे कारीगरों के सामने यह मुद्दा आता है कि वे अपनी आजीविका चलाने और सिर पर छत बनाए रखने के लिए टिकाऊ प्रथाओं को बनाए रखने का प्रयास कैसे करें। कई कारीगर कुछ नहीं कर पाते क्योंकि ग्राहक प्लास्टर ऑफ पेरिस की मांग करते हैं, जिससे उनके पास कोई विकल्प नहीं बचता। प्लास्टर ऑफ पेरिस या वैकल्पिक सामग्रियों के प्रभावों के बारे में कारीगरों में सामान्य जागरूकता की भी कमी है। भले ही हम पर्यावरणविद् कारीगरों को प्लास्टर ऑफ पेरिस का उपयोग न करने के लिए प्रोत्साहित करें या प्रेरित करें, वे एक तरह से ऐसा करने के लिए विवश हैं। कैली का उत्पादन और खरीद भी काफी महंगी है। यह भी ग्राहकों को प्लास्टर ऑफ पेरिस की ओर आकर्षित करता है।

प्लास्टर ऑफ पेरिस के प्रयोग से मशीनीकरण और औद्योगीकरण का ऐसा स्तर आ गया है जिसने मूर्ति बनाने की कला को और भी कमज़ोर कर दिया है। प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियाँ सांचे में घोल डालकर बनाई जा सकती हैं। इससे मिट्टी के कारीगरों की संख्या में कमी आई है। प्लास्टर ऑफ पेरिस के कारण मूर्ति बनाने के लिए आवश्यक कौशल में काफी कमी आई है। गणेश जी की मूर्तियाँ बनाने की कला अपनी विशिष्टता और पवित्रता खोती जा रही है। यह सुंदर परंपरा और प्रथा धीरे-धीरे व्यवसायीकरण की ओर बढ़ रही है। बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्राथमिकता दी जा रही है और इसका हस्तशिल्प स्वरूप कम होता जा रहा है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियों के उपयोग और विसर्जन में वृद्धि हुई है। [12,13,14]

कारीगरों की आजीविका का मुद्दा भी सामने आता है। सर्वेक्षण से पता चला कि गणेश प्रतिमा बनाना न केवल अधिकांश कारीगरों की आय का मुख्य स्रोत है, बल्कि उनका पूरा परिवार भी इसी काम में लगा हुआ है। इसलिए, इन कारीगरों के लिए अपना व्यवसाय चलाना बेहद ज़रूरी है और उन्हें बाज़ार की मांग के अनुसार ही काम करना पड़ता है। इससे कारीगरों को प्लास्टर ऑफ पेरिस से अन्य सामग्रियों की ओर ले जाना और भी जटिल हो जाता है, क्योंकि उनमें से अधिकांश के पास आय का कोई अन्य स्रोत नहीं है।

परंपरा, स्थिरता और आजीविका सभी एक जटिल, परस्पर जुड़े हुए संबंध में मौजूद हैं। परंपरागत रूप से, गणेश की मूर्तियाँ केवल मिट्टी से बनाई जाती थीं। अब इसमें बदलाव और विकास हुआ है। फिर भी, यह परंपरा जारी है, और इसका जारी रहना महत्वपूर्ण है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, इस विकास के कारण यह प्रथा पर्यावरण के लिए

हानिकारक और अस्थिर हो गई है। यह अब पर्यावरण को नुकसान पहुँचा रही है और इस परंपरा को जारी रखने के लिए वैकल्पिक तरीकों की तलाश करना आवश्यक है। यह तर्क भी दिया जा सकता है कि क्या इस परंपरा को जारी रखना चाहिए क्योंकि यह हानिकारक साबित हो रही है। फिर, आजीविका का मुद्दा उठता है। सर्वेक्षण से पता चला है कि कारीगरों का एक विशाल समुदाय अपनी आय के लिए इस परंपरा पर निर्भर है। इस प्रथा को जारी न रखने से पहले से ही संघर्षरत कारीगरों के समुदाय पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। इसी तरह, आजीविका और स्थिरता भी आपस में जुड़ी हुई हैं। प्लास्टर ऑफ पेरिस के बाजार में हावी होने के कारण स्थिरता की ओर बढ़ने से आजीविका बाधित हो सकती है। इससे इस क्षेत्र में और भी जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं।

कुल मिलाकर, ये तीनों आपस में काफी जुड़े हुए हैं, और किसी एक क्षेत्र में बदलाव का असर निश्चित रूप से दूसरे क्षेत्रों पर भी पड़ेगा। एक ऐसा मध्य मार्ग खोजना महत्वपूर्ण है जहाँ विसर्जन की प्रथा जारी रहे और पूरी तरह से टिकाऊ हो, और यह टिकाऊपन कारीगरों के एक बड़े समुदाय की आजीविका को प्रभावित न करे। इन तीनों के बीच संतुलन बनाए रखने से गणेश चतुर्थी का त्योहार सचमुच भव्य बन सकता है। इसे हासिल करने का एक तरीका शायद यह है कि न केवल उपभोक्ताओं बल्कि कारीगरों को भी वैकल्पिक सामग्रियों के बारे में जागरूक किया जाए। इन सामग्रियों के साथ काम करने का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। उपभोक्ताओं की सोच में बदलाव लाने के लिए भी प्रयास किए जाने चाहिए। यदि इन सभी पहलुओं को हासिल कर लिया जाए, तो शायद संतुलन पाया जा सकता है। लेकिन व्यवहार में और वास्तविक जीवन में यह संभव हो पाता है या नहीं, यह देखना बाकी है, क्योंकि इसमें हमेशा कई पहलुओं पर विचार करना बाकी है।

परिणाम

बस्तर में गणेश प्रतिमाओं की अनंत कथायें है, उनकी सुन्दरता, शिल्प, कलात्मकता आदि से आप प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। ये सभी प्रतिमायें उपेक्षित हैं, इनपर बहुत कुछ लिखा-पढ़ा अथवा चर्चा में लाया नहीं गया है। मैने कांकेर से कोण्टा तक विस्तृत बस्तर संभाग के सातों जिले के हर परिक्षेत्र में किसी न किसी रूप में गणेश प्रतिमा देखी हैं, वह भी अनेक रूपों व आकारों में। कोई नृत्य करती प्रतिमा है तो कोई खड़ी मुद्रा में, कोई ध्यानस्थ गणेश की प्रतिमा है तो कोई किसी प्रचलित आसन में बैठी हुई, कहीं मोदक भक्षण करते गणेश दिखाई पड़ते हैं तो कहीं युद्ध मुद्रा में भी। बस्तर के प्रत्येक शिव मंदिर की द्वार शाखा यहां तक कि नारायणपाल के विष्णु मंदिर तक में गणेश प्रतिमा के दर्शन हो जाते हैं। कुछ भव्य और ज्ञात प्रतिमाओं में जगदलपुर, कुरुसपाल, कांकेर, बड़े-डोंगर, दंतेवाड़ा, बीजापुर आदि आदि स्थानों पर उनकी उपस्थिति है लेकिन अनेकों अज्ञात तथा अल्पचर्चित प्रतिमायें सम्पूर्ण बस्तर भर से प्राप्त होती रही हैं जो छठवीं से तेरहवीं सदी के बस्तर को अलग ही दृष्टिकोण से देखने के लिये बाध्य करती है।[15,16,17]

बस्तर के नाग शासकों की निर्मितियां भव्य थीं और वे शेष भारत में प्राप्त होने वाली प्रतिमाओं व मंदिरों से कई मायनों में भिन्न भी रही हैं। बस्तर में वे शिव तथा शक्ति के समान रूप से उपासक प्रतीत होते हैं जैसा कि इतिहास से प्राप्त प्रमाण इशारा करते हैं। इस क्षेत्र में सप्तमातृकाओं की जितनी भी प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, सभी में अनिवार्य रूप से गणेश भी बनाये गये हैं, कतिपय स्थानों पर नवग्रहों के साथ भी गणेश दर्शाये गये हैं। बस्तर की गणेश प्रतिमायें संरक्षण के लिये पुरातत्व विभाग की लम्बे समय से प्रतीक्षा में हैं। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं कि यदि केवल बारसूर और गढ़-धनौरा की भी पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई की जाये तो वहां सिरपुर से भी अधिक भव्य इतिहास दबा मिल सकता है, काश कभी पहल हो। इस आलेख के माध्यम से कुछ महत्वपूर्ण गणेश प्रतिमाओं पर एकचर्चा प्रस्तुत है।

ढोलकल के गणेश

लगभग अस्सी वर्ष पहले अंग्रेज भूवैज्ञानिक क्रूकशैंक ने पहली बार ढोलकल स्थल का जिक्र अपनी 'जियोलॉजिकल रिपोर्ट ऑफ साउथ बस्तर में किया था। इसी दौर में बैलाडिला खदानों की खोज तथा चौदह लौह निक्षेपों की पहचान की गयी थी। ढाई फीट ऊंची विशाल गणपति की प्रतिमा तक पहुंचने के लिये दंतेवाड़ा जिला मुख्यालय से पंद्रह कि.मी. दूर ग्राम फरसपाल से आगे चल कर पहले कोतवालपारा पहुंचना होता है। इस स्थान से अगला पड़ाव है ग्राम जंगपारा। यहां से आगे ढोलकल की पहाडियों तक पहुंचा जाता है जहां तीन सौ मीटर ऊंची पहाड़ी की चोटी पर दुर्लभ विशालकाय गणपति की प्रतिमा स्थापित है। ढोलकल दो समानांतर पहाडियां हैं जिनका आकार एक खड़े ढोल की तरह है। एक पर्वत शिखर पर गणेश प्रतिमा अवस्थित है तो दूसरी पहाड़ी पर वर्तमान में भग्नावशेष है जिसका जिक्र क्रूकशैंक ने सूर्य मंदिर के रूप में किया था। कहते हैं सूर्य की किरण सबसे पहले इस सूर्य मंदिर पर पड़ती थी और उसके पश्चत ही निकटवर्ती गांव रोशन होते थे। सूर्य प्रतिमा अब यहां उपलब्ध नहीं है। ढोलकल अपने इर्दगिर्द घिरे घने जंगलों और दुर्गमतम रास्तों के कारण लोगों की निगाह से बच गया। स्थानीय ग्रामीण अवश्य यहाँ आते रहे पूजा पाठ करते रहे। नक्सली आतंकवाद के दौर में ग्रामीणों ने भी इस स्थल पर पूजा पाठ करना छोड़ दिया और ढोलकल भुला दिया गया।

ढोलकल की गणेश प्रतिमा वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त कलात्मक है। प्रतिमा में ऊपरी दांये हाथ में परशु, ऊपरी बांये हाथ में टूटा हुआ एक दंत, नीचे का दायां हाथ अभय मुद्रा में अक्षमाला धारण किए हुए तथा निचला बायां हाथ मोदक धारण किए हुए है। पर्यंकासन मुद्रा में बैठे हुए गणपति की सूंड बायीं ओर घूमती हुई शिल्पांकित है। प्रतिमा के उदर में सर्प लपेटे हुए तथा जनेऊ किसी सांकल की तरह धारण किये हुए अंकित है। गणपति की जनेऊ के रूप में सांकल का चित्रण सामान्य नहीं है। इस प्रतिमा में पैर एवं हाथों में कंकण आभूषण के रूप में शिल्पांकित है तथा सिर पर धारित मुकुट भी सुंदर अलंकरणों से सज्जित है। सरसरी निगाह से देखने पर ये प्रतिमा नवीं-दसवी शताब्दी की प्रतीत होती हैं। यह समय प्राचीन बस्तर की नाग सत्ता का था। इन स्थलों व यहां की तस्वीरों को गंभारता से देखने पर अनुमान लगता है कि आस पास किसी बड़े प्राचीन नगर की उपस्थिति अवश्यंभावी है। वह भव्य नाग-कालीन नगर रहा होगा या संभवत: कोई राजधानी जिस के निकट ढोलकल के शिखर पर सूर्य की पहली किरण पड़ती रही होगी एवं फिर नगर में उजियारा फैल जाता होगा। प्रथम-वंदनीय भगवान गणेश की इतनी प्रतिमायें बस्तर भर में नाग शासकों द्वारा बनवायी गयी हैं कि यहां भी यह उपस्थिति अनायास प्रतीत नहीं होती। वरिष्ठ आदिवासी नेता स्व. महेन्द्र कर्मा से दंतेवाड़ा में हुई मुलाकात के दौरान भी उनसे ढोलकल पर चर्चा हुई थी। उन्होंने इस स्थल में प्रचलित एक किंवदंती के विषय में बताया था जिसके अनुसार गणेश-परशुराम युद्ध के बाद गणेश जी के एक दांत के कट जाने सम्बन्धी मान्यता यहां से जोड़ी जाती है। ढोलकल में उपलब्ध मूर्ति में भी भगवन गणेश ने एक हाथ में कटा हुआ दंत ही थामा हुआ है। यद्यपि एक दांत थामे हुए गणेश जी की अनेक मूर्तियां हैं तथा बारसूर की गणेश मूर्तियों में भी ऐसी ही समानतायें हैं अत: इस मूर्ति को सीधे किसी दंत कथा से जोडना उचित नहीं किंतु यह अवश्य है कि इस दिशा में गंभीरता से कार्य करने की आवश्यकता है। बस्तर के अतीत में इतना कुछ छिपा हुआ है जो पिछड़ेपन को ले कर वर्तमान की प्रचलित धारणा को मिथक बना देता है अत: मेरी पुरातत्वविदों और इतिहासकारों से करबद्ध प्रार्थना है कि बस्तर पर प्राथमिकता से कार्य किया जाना चाहिये।[18,19,20]

ढोलकल की गणेश प्रतिमा पिछले वर्ष तब चर्चा में आयी थी जब अचानक सोशल माध्यमों से यह खबर प्रसारित हुई कि ढोलकल प्रतिमा अपने स्थान से गायब है। शासन-प्रशासन ने स्थिति की गंभीरता को समझा और तत्काल ही वे विशेषज्ञों के साथ घटनास्थल के लिये रवाना हो गये थे। खोजबीन के बाद पहाड़ी के नीचे ही कई टुकड़ों में यह गणेश प्रतिमा प्राप्त हो गयी थी। यह आज भी सवाल बना हुआ था कि यह घटना किसका कृत्य हो सकता है? रायपुर से

पुरातत्व के जानकार पद्मश्री अरुण शर्मा को ढोलकल घटना की जांच व उसके पुनर्निर्माण की संभावनाओं को तलाशने के लिये भेजा गया था। आरम्भिक जांच के बाद ही पता चल गया था कि पहले ढोलकल पर अवस्थित प्रतिमा को हथौड़े अथवा किसी भारी वस्तु से प्रहार कर तोडने की कोशिश की गयी। जब इसमें सफलता हाथ नहीं लगी तब सब्बल आदि से इसे धकेल कर पहाड़ी से नीचे गिरा दिया गया। यह इतिहास की हत्या का क्रूर प्रयास था।

निष्कर्ष

बहुत सी ऐतिहासिक महत्व की प्रतिमायें इसलिये अनकही रह जाती है क्योंकि वे किसी बड़ी लकीर के नीचे अवस्थित होती हैं। बस्तर में भव्य गणेश प्रतिमाओं की जब भी चर्चा होती है तो उसमें अग्रणी नाम युगल गणेश प्रतिमाओं, बारसूर और तत्पश्चात ढोलकल, फरसपाल का आता है। इन दोनों ही प्रतिमाओं से सुन्दर, बेहतर तराशी हुई साथ ही अधिक संरक्षित प्रतिमा दंतेवाड़ा में स्थित है और वह भी माँ दंतेश्वरी के मंदिर में गर्भगृह के ठीक बाहर, दाहिनी ओर के निकासी द्वार से लग कर। दंतेश्वरी मंदिर में पहुंचने वाले भक्तों के लिये आकर्षण तथा ध्येय दंतेश्वरी प्रतिमा ही रहती है अत: यह सुन्दर व विशाल गणेश प्रतिमा उपेक्षित रह जाती है। दंतेश्वरी मंदिर किसी भव्य संग्रहालय से कम नहीं है जिसके निर्माण का श्रेय तो चालुक्य शासक अन्नमदेव को जाता है किंतु भीतर अवस्थित अधिकतम प्रतिमायें नाग (760 – 1324 ई) अथवा नल (ईसापूर्व 600 – 760 ई.) कालीन हैं।

काले प्रस्तर से निर्मित यह गणेश प्रतिमा न केवल भव्य है अपितु भिन्न भी है। बैठी हुई मुद्रा में गणेश प्रतिमा की सूंड बांयीं ओर मुड़ी हुई तथा मोदक का भक्षण करती हुई उकेरी गयी है। मैं जितनी बार भी मंदिर गया हूं सर्वदा पूजित अवस्था में यह प्रतिमा होने के कारण इसकी बारीकियों की विवेचना अथवा अनुमापन प्राप्त नहीं हो सका। तथापि लगभग पांच फुट लम्बाई में यह प्रतिमा अवश्य होनी चाहिये। इस प्रतिमा में पैर एवं हाथों में कंकण आभूषण के रूप में शिल्पांकित है तथा सिर पर धारित मुकुट भी सुंदर अलंकरणों से सज्जित है। बस्तर में इस प्रतिमा सहित बहुतायत भव्यतम निर्माण नागों का है और उस काल का अधिकतम निर्माण शिव लिंग तथा गणेश प्रतिमायें व उनके मंदिर हैं। दंतेवाड़ा में स्थित मां दंतेश्वरी मंदिर में स्थापित यह अल्पचर्चित प्रतिमा चर्चा मांगती है।[19,20]

जन-मान्यता है कि दैत्येन्द्र वाणासुर की पुत्री उषा और उनके मंत्री कुभांड की कन्या चित्रलेखा अंतरंग सखियां थीं। इन दोनों के आराध्य देव गणेश थे। इनकी पूजा के लिये ही वाणासुर ने गणेश की दो विशाल प्रतिमाओं को एक ही स्थान पर स्थापित करवाया था। इतिहासकार इन दोनों ही गणेश प्रतिमाओं को बारहवी सदी में निर्मित निरूपित करते हैं। इस आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह बस्तर के नाग युग की गौरव प्रतिमायें हैं। बारसूर के मंदिरों में पर्यटकों को सर्वाधिक आकर्षित करती हैं गणेश की यही विशालकाय दो प्रतिमायें। जो गणेश प्रतिमा अधिक विशाल है इसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई क्रमश: 230 सेमी, 190 सेमी तथा 130 सेमी है। इस आधार पर इसे विश्वभर में ज्ञात तीसरी सर्वाधिक विशाल गणेश प्रतिमा होने का गौरव प्राप्त है। लीलासन में विराजित इस आठ फुट की गणेश प्रतिमा की कई अन्य विशेषतायें भी हैं। प्रतिमा ने उपरी दाहिने हाथ में परशु, निचले हाथ में टंक, उपरी बायें हाथ में सर्प तथा निचले हाथ में मोदक धारण किया हुआ है। प्रतिमा ने करण्ड मुकुट, यज्ञोपवीत, कंकण तथा पादवलय धारण किया हुआ है। इस प्रतिमा से आकार में छोटी है गणेश की साथ ही स्थापित दूसरी प्रतिमा जिसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई क्रमश: 160 सेमी, 100 सेमी तथा 75 सेमी है। इस चतुर्भुजी प्रतिमा ने दायें उपरी हाथ में सर्प, दायें निचले हाथ में परशु, बायें उपरी हाथ में आयुध (खण्डित) तथा बायें निचले हाथ में मोदक धारण किया हुआ है। प्रतिमा ने करण्ड मुकुट, यज्ञोपवीत, कंकण तथा पादवलय धारण किया हुआ है। प्रतिमा के ठीक नीचे उनके आसन के अग्र भाग में मूषक भी अंकित किया गया है।

जितनी विशाल यह प्रतिमायें हैं इससे कहा जा सकता है कि नाग युगीन बस्तर मे यह बड़ा तीर्थस्थल रहा होगा। जैसे जैसे इसका महत्व बढ़ता गया अनेक तरह की दंतकथाओं ने प्रतिमा के साथ खुद को जोड़ लिया गया। हमे हमेशा से यह बताया गया कि धीरे धीरे प्रतिमा अपना आकार बढ़ा रही है। किसी भी प्रसिद्ध स्थान के साथ इस तरह की अनेक कहानियों का गढना-बुनना स्वाभाविक है। कभी जहां एक विशालकाय मंदिर रहे होंगे वहां आज उसके ध्वंसावशेष दूर दूर तक बिखरे पड़े हैं। सरसरी निगाह से अवशेषों को देखने पर यह जान पड़ता है कि यहां एक पूर्वाभिमुख मंदिर, एक पश्चिमाभिमुख मंदिर तथा एक लघुमंदिर रहा होगा। मंदिर के अवशेष इस तरह एक कोने में पड़े हुए हैं कि उन्हें अलग अलग से देख पाना या उनकी विस्तार से विवेचना कर पाना संभव नहीं है। [20]

संदर्भ

1. हेरास 1972 , पृ. 58.
2. गेटी 1936 , पृ. 5.
3. "गणेश कमल फेंकने की तैयारी में। बसोहली लघुचित्र, लगभग 1730। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली। मुद्गलपुराण (सातवाँ, 70) में, अहंकार के राक्षस (ममासुर) को मारने के लिए, जिसने उन पर आक्रमण किया था, गणेश विघ्नराज ने उस पर अपना कमल फेंका। दिव्य पुष्प की सुगंध सहन न कर पाने के कारण, राक्षस ने गणेश के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया ।" इस कृति के विवरण के उद्धरण के लिए देखें: मार्टिन-डुबोस्ट 1997 , पृष्ठ 73।
4. रामचंद्र राव 1992 , पृ. 6.
5. "गणेश, सबसे लोकप्रिय देवता" । डेक्कन हेराल्ड । मूल लेख 5 सितंबर 2020 को संग्रहित किया गया ।
6. ब्राउन 1991 , पृ. 1 " गणेश को अक्सर भारत में सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवता के रूप में कहा जाता है।"
7. गेटी 1936 , पृष्ठ 1 " गणेश , गणों के स्वामी , यद्यपि ब्राह्मणवादी देवमंडल में शामिल होने वाले नवीनतम देवताओं में से हैं, फिर भी वे सभी हिंदू देवताओं में सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवता थे और अभी भी हैं, और उनकी प्रतिमा भारत के लगभग हर हिस्से में पाई जाती है।"
8. रामचंद्र राव 1992 , पृ. 1
9. मार्टिन-डुबोस्ट 1997 , पृ. 1
10. ब्राउन 1991 , पृ. 1
11. अध्याय XVII, "विदेश यात्राएँ", नागर 1992 , पृ. 175–187 । भारत के बाहर गणेश के भौगोलिक प्रसार और लोकप्रियता की समीक्षा के लिए।
12. गेटी 1936 , पृष्ठ 37-38 , नेपाल, चीनी तुर्किस्तान , तिब्बत, बर्मा, सियाम, इंडो-चीन , जावा, बाली, बोर्नियो, चीन और जापान में गणेश पूजा के प्रसार की चर्चा के लिए।
13. मार्टिन-डबोस्ट 1997 , पीपी 311-320
14. थापन 1997 , पृ. 13
15. आप्टे 1965 , पृ. 2–3
16. मार्टिन-डुबोस्ट, पृष्ठ 2.
17. बाधाओं को दूर करने वाले देवता के रूप में गणेश जी की भूमिका के लिए, सरस्वती 2004 , पृष्ठ 80 में गणपति उपनिषद के श्लोक 12 पर टिप्पणी देखें।